उसके सम्बन्ध में फिर भगवान महावीर ने विस्तार से वर्णन किया।

गांगेय- ''भगवन्! सत् नारक उत्पन्न होते हैं या असत्। इसी प्रकार सत् तिर्यंच, मनुष्य और देव उत्पन्न होते हैं या असत्?''

महावीर- ''गांगेय! सभी सत् उत्पन्न होते हैं, असत् कोई भी उत्पन्न नहीं होता।''

गांगेय- ''भगवन्! नारक, तिर्यंच और मनुष्य सत् मरते हैं या असत्? इसी प्रकार देव भी सत् च्युत होते हैं या असत्?''

महावीर- ''गांगेय! सभी सत् मरते हैं, असत् कोई नहीं मरता।

गांगेय- ''भगवन्! सत् की उत्पत्ति कैसी? और मरे हुए की सत्ता किस प्रकार?''

महावीर- ''गांगेय! पुरुषादानीय पार्श्व अरिहन्त ने लोक को शाश्वत कहा है। उसमें सर्वथा असत् की उत्पत्ति नहीं होती और 'सत्' का सर्वथा नाश भी नहीं होता।[2]

गांगेय- ''भगवन्! यह वस्तुतत्त्व आप स्वयं आत्म-प्रत्यक्ष से जानते हैं या किसी हेतु प्रयुक्त अनुमान से अथवा किसी आगम के आधार से?''

महावीर- ''गांगेय! यह सभी मैं स्वयं जानता हूं। किसी भी अनुमान अथवा आगम के आधार पर मैं नहीं कहता। आत्म-प्रत्यक्ष से जानी हुई बात ही कहता हूं।''

गांगेय- ''भगवन्! अनुमान और आगम के आधार के बिना इस विषय में कैसे जाना जा सकता है?''

महावीर- ''गांगेय! केवली पूर्व से जानता है, पश्चिम से जानता है, उत्तर और दक्षिण से जानता है। केवली परिमित जानता है और अपरिमित भी जानता है। केवली का ज्ञान प्रत्यक्ष होने से उसमें सर्व वस्तुतत्व प्रतिभासित होते हैं।''

गांगेय- ''भगवन्! नरकगति में नारक, तिर्यंचगति में तिर्यंच, मनुष्यगति में मनुष्य और देवगति में देव स्वयं उत्पन्न होते हैं या किसी की प्रेरणा से? वह अपनी गतियों से स्वयं निकलते हैं या उन्हें कोई निकालता है?''

महावीर- ''आर्य गांगेय! सभी जीव अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार शुभाशुभ गतियों में उत्पन्न होते हैं और वहां से निकलते हैं। इसमें दूसरा कोई भी प्रेरक नहीं है।''

इस प्रकार प्रश्नोत्तर के पश्चात् गांगेय अनगार ने भगवान महावीर को यथार्थ रूप से पहचाना, उसे यह पूर्ण निष्ठा हो गई कि ये सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। भगवान महावीर को त्रिप्रदक्षिणापूर्वक वन्दन और नमस्कार कर महावीर के पंच महाव्रतरूप धर्म में प्रविष्ट हुए।

भगवान महावीर अनेक क्षेत्रों में धर्म की प्रभावना कर पुनः वैशाली पधारे और यह बत्तीसवां वर्षावास भी वैशाली में किया।

तैंतीसवां वर्ष : गौतम की जिज्ञासाएं : शील और श्रुत

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान ने वैशाली से मगध की ओर प्रस्थान किया। अनेकानेक क्षेत्रों को पावन करते हुए राजगृह पधारे और गुणशील उद्यान में ठहरे। गुणशील उद्यान के आसपास अन्य मतावलम्बी कई साधु व परिव्राजक रहते थे। समय-समय पर उनमें प्रश्नोत्तर होते थे। वे अपने मत का मण्डन और परमत का खण्डन किया करते थे। अन्य मतावलम्बियों की विचारधारा कहां तक सत्यलक्षी है, यह जानने के लिए गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किया- ''भगवन्! कुछ अन्यतीर्थिक यह कहते

हैं कि शील (सदाचार) श्रेष्ठ हैं। दूसरे कहते हैं कि श्रुत श्रेष्ठ हैं। तीसरे का अभिमत है कि शील और श्रुत दोनों श्रेष्ठ हैं। भगवन्! आपका इस सम्बन्ध में क्या कथन है?''

महावीर- ''गौतम! अन्यतीर्थिकों का प्रस्तुत कथन सम्यक् नहीं है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है- पुरुष चार प्रकार के होते हैं। कितने ही शील-सम्पन्न होते हैं श्रुत-सम्पन्न नहीं, कितने ही श्रुत-सम्पन्न होते हैं शील-सम्पन्न नहीं, कितने ही शील-सम्पन्न भी होते हैं और श्रुत-सम्पन्न भी। और कितने ही शील-सम्पन्न भी नहीं होते और न श्रुत-सम्पन्न ही होते हैं।

इनमें जो शीलवान हैं परन्तु श्रुतवान उनको उसे मैं देश-आराधक कहता हूं, जो शीलवान नहीं पर श्रुतवान हैं उनको मैं देश-विराधक कहता हूं, जो शीलवान और श्रुतवान हैं उन्हें मैं सर्वाराधक कहता हूं और जो न शीलवान हैं और न श्रुतवान हैं उन्हें मैं सर्वविराधक कहता हूं।''[३३]

आराधना

भगवान महावीर के समाधान से प्रसन्न होकर गौतम की जिज्ञासा और आगे बढ़ी तथा उन्होंने अन्य विविध प्रश्न पूछे- गौतम- ''भगवन्! आराधना कितने प्रकार की है?''

महावीर- ''आराधना के तीन प्रकार हैं- (१) ज्ञानाराधना, (२) दर्शनाराधना, और (३) चारित्राराधना।''

गौतम- ''ज्ञानाराधना के कितने प्रकार हैं?''

महावीर- वह तीन प्रकार की है- (१) उत्कृष्ट, (२) मध्यम, (३) जघन्य।

गौतम- ''दर्शनाराधना कितने प्रकार की है?''

महावीर- ''वह भी ज्ञानाराधना की तरह तीन प्रकार की है।''

गौतम- ''भगवन्! जिस जीव को उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है उसे क्या उत्कृष्ट दर्शनाराधना भी होती है? जिस जीव को उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है क्या उसे उत्कृष्ट ज्ञानाराधना भी होती है?''

महावीर- ''जिस जीव को उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है उसे उत्कृष्ट या मध्यम दर्शनाराधना होती है और जिसे उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है उसे उत्कृष्ट या जघन्य ज्ञानाराधना होती है।''

गौतम- ''भगवन्! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना का आराधक कितने भवों के पश्चात् सिद्ध होता है?''

महावीर- '' कितने ही जीव उसी भव में सिद्ध होते हैं, कितने ही दो भवों में सिद्ध होते हैं, कितने ही जीव कल्पोपपन्न (१२ देवलोक में) और कितने ही कल्पातीत देव में उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार दर्शनाराधना और चारित्राराधना के सम्बन्ध में जानना चाहिए।''

पुद्गल-परिणाम

गौतम- ''भगवन्! पुद्गल का परिणाम कितने प्रकार का है?''

महावीर- वह वर्ण-परिणाम, गंध-परिणाम, रस-परिणाम, स्पर्श-परिणाम और संस्थान-परिणाम रूप पांच प्रकार का है।''

गौतम- ''भगवन्! वर्ण-परिणाम कितने प्रकार का है?''

महावीर- कृष्ण वर्ण-परिणाम, नील वर्ण-परिणाम, लोहित वर्ण-परिणाम, हरिद्रा वर्ण-परिणाम, शुक्ल वर्ण-परिणाम।[३४] इसी प्रकार गंध-परिणाम-सुरभिगंध और दुरभिगंध रूप दो प्रकार का है। रस-परिणाम तिक्त रस-परिणाम, कटुक रस-परिणाम, कषाय रस-परिणाम, अम्ल रस-परिणाम, मधुर रस-परिणाम रूप पांच प्रकार है। और स्पर्श परिणाम-कर्कश, कोमल, गुरू, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध

और रूक्ष रूप आठ प्रकार का है।''

गौतम- ''भगवन्! संस्थान-परिणाम कितने प्रकार का है?''

महावीर- परिमण्डल संस्थान-परिणाम, वर्तुल संस्थान-परिणाम, त्रस संस्थान परिणाम, चतुरस्र संस्थान परिणाम, आयत संस्थान-परिणाम, इस प्रकार पांच प्रकार का है।''

गणधर गौतम ने पुद्गलों के सम्बन्ध में भी अनेक जिज्ञासाएं प्रस्तुत कीं, भगवान ने सभी का सम्यक् प्रकार से समाधान दिया।[34]

जीव और जीवात्मा

गौतम- ''भगवन्! अन्यतीर्थिकों का यह अभिमत है कि प्राणीहिंसा, मृषावाद, चौर्य, मैथुन, संग्रहेच्छा, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, हर्ष, शोक, पर-निन्दा, माया, मृषा, मिथ्यात्व आदि दुष्ट भावों में प्रवृत्ति करने वाले प्राणी का जीव पृथक है और उसका जीवात्मा पृथक् है। इसी तरह इन दुष्ट भावों का परित्याग करके धर्ममार्ग में प्रवृत्ति करने वाले प्राणी का जीव भी अन्य है। जो औत्पत्तिकी, पारिणामिकी आदि बुद्धियुक्त हैं उनका जीव पृथक है, जो अज्ञान और पराक्रम करने वाला है उसका भी जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। यहां तक कि नारक, देव और तिर्यक् जातीय पशु-पक्षी आदि देहधारियों का भी जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। ज्ञानावरणीयवादि कर्मवान, कृष्णलेश्यादि लेश्यवान, सम्यक् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि, दर्शनवान और ज्ञानवान इन सभी का जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है।

अन्यतीर्थिकों की प्रस्तुत मान्यता के सम्बन्ध में आपश्री का क्या कथन है?''

महावीर- ''अन्यतीर्थिकों की यह मान्यता मिथ्या है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि 'जीव' और 'जीवात्मा' एक ही पदार्थ है। जो जीव है वही जीवात्मा है।''

केवली की भाषा

गौतम- ''भगवन्! अन्यतीर्थिकों का यह मन्तव्य है कि यक्षावेश में परवश होकर कभी केवली भी मृषा अथवा सत्यमृषा भाषा बोलते हैं, यह किस प्रकार? क्या केवली ये दो प्रकार की भाषा बोलते हैं?''

महावीर- अन्यतीर्थिकों का प्रस्तुत कथन मिथ्या है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि न कभी केवली को यक्षावेश होता है और न वे कभी भी मृषा या सत्यमृषा भाषा बोलते हैं। वे असावद्य, अपीड़ाकारक सत्य भाषा बोलते हैं।''[35]

राजा गागलि की दीक्षा

राजगृह से भगवान महावीर चम्पा की तरफ विचरे और पृष्ठ चम्पा में पिठर, गागलि आदि की दीक्षाएं हुई। वहां से भगवान वापस गुणशील चैत्य में पधारे। उन दिनों गुणशील चैत्य के निकट कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदक, नामोदक, अन्नपाल, शैवाल, शंखपाल, सुहस्ती और गाथापति आदि अनेक अन्यतीर्थिक रहते थे।

श्रमणोपासक मद्दुक और कालोदायी की तत्वचर्चा

एक समय वे श्रमण भगवान महावीर प्ररूपित पञ्चास्तिकाय विषयक चर्चा करते हुए बोले- ''श्रमण ज्ञातपुत्र धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय इन पांच

'अस्तिकाओं' की प्ररूपणा करते हैं और इन पांच में से 'जीवास्तिकाय' को वे 'जीवकाय' कहते हैं और शेष चारों को 'अजीवकाय', फिर वे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय इन चार अस्तिकाओं को 'अरूपिकाय' बनाते हैं और एक पुदगलास्तिकाय को 'रूपिकाय'। आर्यो! श्रमण ज्ञातपुत्र का यह निरूपण क्या सत्य है? इस कथन में वास्तविकता क्या होनी चाहिए?''

जिस समय अन्यतीर्थिक उक्त चर्चा कर रहे थे, उसके पहले ही भगवान महावीर के आगमन के समाचार राजगृह में पहुंच चुके थे और भविष्य नागरिकगण वन्दन-नमस्कार और धर्म-श्रवण के लिए गुणशील चैत्य की तरफ जा रहे थे। उन नागरिकगणों में एक मद्दुक नामक श्रमणोपासक भी था।

मद्दुक महावीर का भक्त और जिन-प्रवचन का ज्ञाता गृहस्थ था। वह पैदल भगवान महावीर के समवसरण में जा रहा था। कालोदायी आदि अन्यतीर्थिक बैठे हुए महावीर के पञ्चास्तिकाय की चर्चा कर रहे थे कि मद्दुक वहां से होकर गुजरा। उसे देखते ही वे एक दूसरे को संबोधन करते हुए बोले- ''देवानुप्रियो! देखिए यह श्रमणोपासक जा रहा है, चलिए हम इस विषय में पूछें। यह ज्ञातपुत्र के तत्वों का खासा अभ्यासी है।'' यह कहते हुए वे मद्दुक के पास गए और उसे रोककर बोले-''हे मद्दुक! तेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पांच अस्तिकाओं का प्रतिपादन करते हैं और उनमें से किसी को जीव कहते हैं, किसी को अजीव, किसी को रूपी बतलाते हैं और किसी को अरूपी, सो मुद्दुक! तेरा इस विषय में क्या अभिप्राय है? क्या तू इन धर्मास्तिकायादि को जानता और देखता है?''

मद्दुक-''इनके कार्यों से इनका अनुमान किया जा सकता है, बाकी धर्मास्तिकायादि पदार्थ अरूपी होने से जाने और देखे नहीं जा सकते।''

अन्यतीर्थिक-''हे मद्दुक! तू कैसा श्रमणोपासक है जो अपने धर्माचार्य के कहे हुए धर्मास्तिकायादि पदार्थों को जानता और देखता नहीं है?''

मद्दुक-''आयुष्मानो! हवा चलती है, यह बात सत्य है?''

अन्यतीर्थिक-''हां, हवा चलती है, पर इससे क्या?''

मद्दुक-''आयुष्मानो! तुम हवा का रंग रूप देखते हो?''

अन्यतीर्थिक-''नहीं, हवा का रूप देखा नहीं जाता।''

मद्दुक-''आयुष्मानो! घ्राणेन्द्रिय के साथ स्पर्श करने वाले गन्ध के परमाणु होते हैं?''

अन्यतीर्थिक-''हां, घ्राणेन्द्रिय का विषय गंध के परमाणु होते हैं।''

मद्दुक- ''आयुष्मानो! तुम घ्राणेन्द्रिय का स्पर्श करने वाले गंध के परमाणुओं का रूप देखते हो?''

अन्यतीर्थिक-''नहीं, गन्ध के परमाणुओं का रूप देखा नहीं जाता।''

मद्दुक-''आयुष्मानो! अरणि-सहगत अग्नि होती है?''

अन्यतीर्थिक-''हां, अरणि-सहगत अग्नि होती है।''

मद्दुक-''आयुष्मानो! तुम उस अरणि-सहगत अग्नि के रूप को देखते हो?''

अन्यतीर्थिक-''नहीं, तिरोहित होने से वह देखा नहीं जाता।''

मद्दुक-''आयुष्मानो! समुद्र के उस पार कोई रूप है?''

अन्यतीर्थिक-''हां, समुद्र के उस पार कई रूप हैं।''

मद्दुक-''आयुष्मानो! समुद्र के उस पार के रूपों को तुम देखते हो?''

अन्यतीर्थिक-''नहीं, समुद्र के उस पार के रूप देखे नहीं जा सकते।''

मद्दुक-''आयुष्मानो! देवलोकगत रूपों को तुम देख सकते हो?''

अन्यतीर्थिक-''नहीं, देवलोकगत रूप देखे नहीं जा सकते।''

मद्दुक- इसी तरह हे आयुष्मानो! मैं, तुम या कोई अन्य छद्मस्थ मनुष्य जिस वस्तु को देख न सके वह वस्तु है ही नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। दृष्टिगत न होने वाले पदार्थों को न मानोगे तो तुम्हें बहुत से पदार्थों के अस्तित्व का निषेध करना पड़ेगा और ऐसा करने पर तुम्हें अधिकांश-लोक के अस्तित्व को भी अस्वीकार करना पड़ेगा।'' मद्दुक अपनी युक्तियों से अन्यतीर्थिकों को निरूत्तर कर भगवान महावीर के पास पहुंचा और वन्दन नमस्कारपूर्वक पर्युपासना करने लगा।

मद्दुक ने अन्यतीर्थिकों के कुतर्कों का जो वास्तविक उत्तर दिया था उसका अनुमोदन करते हुए भगवान महावीर ने कहा- ''मद्दुक! तूने अन्यतीर्थिकों को बहुत ठीक उत्तर दिया है। किसी भी प्रश्न या उत्तर में बिना समझे-सुने नहीं बोलना चाहिए। जो मनुष्य बिना समझे लोक समूह में हेतु-तर्क की चर्चा करता है अथवा बिना समझे किसी बात का प्रतिपादन करता है वह अर्हन्त केवली की तथा उनके धर्म की आशातना करता है। मद्दुक ! तूने जो कहा है वह ठीक, उचित और यौक्तिक है।''

भगवान महावीर के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर मद्दुक बहुत संतुष्ट हुआ और अन्यान्य धर्मचर्चा कर वह अपने स्थान पर गया।

मद्दुक के चले जाने के बाद गौतम ने पूछा- ''भगवन्! मद्दुक श्रमणोपासक आपके पास निर्ग्रन्थ-श्रामण्य धारण करने की योग्यता रखता है?''

महावीर-''गौतम! मद्दुक हमारे पास प्रव्रज्या लेने में समर्थ नहीं है। मद्दुक गृहस्थाश्रम में रहकर देशविरति गृहस्थ धर्म की आराधना करेगा और अन्त में समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण कर अरूणाभ देव विमान में देव होगा और वहां से फिर मनुष्य जन्म पाकर संसार से मुक्त होगा।''[100]

इस साल का वर्षावास भगवान महावीर ने राजगृह में किया।

चौंतीसवां वर्ष

हेमन्त ऋतु में राजगह से भगवान महावीर ने बाहर के प्रदेश में विहार किया और अनेक ग्राम-नगरों में निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रचार किया। ग्रीष्मकाल में भगवान महावीर फिर राजगृह पधारे और गुणशील चैत्य में वास किया।

अनगार इन्द्रभूति गौतम एक दिन राजगृह से भिक्षा लेकर भगवान महावीर के पास गुणशील चैत्य में जा रहे थे, उस समय गुणशील चैत्य के मार्ग में कालोदायी, शैलोदायी प्रभृति अन्यतीर्थिक महावीर प्ररूपित पञ्चस्तिकाओं की चर्चा कर रहे थे। गौतम स्वामी को देखकर वे एक दूसरे को संबोधन कर बोले-''देवानुप्रियो! हम धर्मास्तिकायादि के विषय में ही चर्चा कर रहे हैं। देखो, ये श्रमण ज्ञातपुत्र के शिष्य गौतम भी आ गए। चलिए इस विषय में हम गौतम से पूछे।'' यह कहकर कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी प्रमुख अन्यतीर्थिक गौतम स्वामी के पास पहुंचे और उन्हें ठहराकर बोले- ''हे गौतम! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र धर्मास्तिकाय आदि पांच अस्तिकायों की प्ररूपणा करते हैं। इनमें से चार को वे 'आजीवकाय' कहते हैं और एक को 'जीवकाय' तथा चार को 'अरूपिकाय' कहते हैं और एक को 'रूपिकाय'। इस विषय में क्या समझना चाहिए, गौतम? इस अस्तिकाय संबन्धी प्ररूपणा का रहस्य क्या है, गौतम?''

गौतम-"देवानुप्रियो! हम 'अस्तित्त्व' में नास्तित्त्व नहीं कहते और 'नास्तित्त्व' में अस्तित्व नहीं कहते। हम अस्ति को अस्ति और नास्ति को नास्ति कहते हैं। हे देवानुप्रियो! इस विषय में तुम स्वयं विचार करो जिससे कि इसका रहस्य समझ सको।"

अन्यतीर्थिकों के प्रश्न का रहस्यपूर्ण उत्तर देकर गौतम महावीर के पास चले गए, पर कालोदायी गौतम के उत्तर का रहस्य नहीं समझ पाया। परिणामस्वरूप वह स्वयं गौतम के पीछे-पीछे भगवान के पास पहुंचा। महावीर उस समय सभा में धर्मदेशना कर रहे थे। प्रसंग आते ही उन्होंने कालोदायी को संबोधन करके कहा- कालोदायिन! तुम्हारी मण्डली में मेरे पञ्चस्तिकाय निरूपण की चर्चा चली?"

कालोदायी-"जी हां, आप पञ्चस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं यह बात हमने जब से सुनी है तब से प्रसंगवश इस पर चर्चा हुआ करती है।"

महावीर-"कालोदायिन्! यह बात सत्य है कि मैं पञ्चस्तिकाय की प्ररूपणा करता हूं। यह भी सत्य है कि चार अस्तिकाओं को **'अजीवकाय'** और एक को 'जीवकाय' तथा चार को 'अरूपिकाय' और एक को 'रूपिकाय' मानता हूं।"

कालोदायी-"भगवन्! आपके माने हुए इन धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय अथवा जीवास्तिकाय पर कोई सो, बैठ या खड़ा रह सकता है?"

महावीर-"यह नहीं हो सकता कालोदायिन्! इन धर्मास्तिकाय अरूपिकाय पर सोना-बैठना या चलना-फिरना नहीं हो सकता। ये सब क्रियाएं केवल एक पुद्गलास्तिकाय पर, जो कि रूपी और अजीवकाय है, हो सकती हैं, अन्यत्र कहीं नहीं।"

कालोदायी-"भगवन्! पुद्गलास्तिकाय में जीवों के दुष्ट-विपाक पापकर्म किए जाते हैं?"

महावीर-"नहीं कालोदायिन! ऐसा नहीं होता।"

कालोदायी- "भगवन्! इस जीवास्तिकाय में दुष्ट-विपाक पापकर्म किए जाते हैं?"

महावीर- "हां,कालोदायिन! किसी भी प्रकार के कर्म जीवास्तिकाय में ही किए जाते हैं।"

पञ्चास्तिकाय विषयक प्रश्नों का सविस्तार उत्तर देकर भगवान ने कालोदायी के संशय को दूर किया। फलस्वरूप कालोदायी का चित्त निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनने को उत्कण्ठित हुआ। भगवान महावीर को वन्दन कर वह बोला- "भगवन्! मैं विशेष प्रकार से आपका प्रवचन सुनना चाहता हूं।"

भगवान ने कालोदायी को लक्ष्य करके निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश दिया, जिसे सुनकर वह आपके पास निर्ग्रन्थ मार्ग में दीक्षित हो गया।

कालोदायी अनगार क्रमशः निर्ग्रन्थ प्रवचन के एकादशाङ्ग सूत्रों का अध्ययन कर प्रवचन के रहस्य के ज्ञाता हुए।[२८]

राजगृह नगर से ईशान दिशा में धनवानों के सैकड़ों प्रासादों से सुशोभित नालन्दा नामक एक समृद्ध उपनगर था। यहां 'लेव' नामक एक धनाढ्य गृहस्थ रहता था जो निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुयायी और जैन श्रमणों का परम भक्त था। नालंदा के उत्तर-पूर्व दिशा भाग में उक्त लेव श्रमणोपासक की 'शेषद्रविका' नाम की उदकशाला और उसके पास ही 'हस्तियाम' नामक उद्यान था।

एक समय भगवान महावीर हस्तियाम में ठहरे हुए थे कि शेषद्रविका के पास इन्द्रभूति को मैतार्य गोत्रीय पेढ़ालपुत्र उदक नामक एक पार्श्वापत्य निर्ग्रन्थ मिले और गौतम को संबोधन कर बोले- "गौतम! तुमसे कुछ पूछना है। आयुष्मन्! मेरे प्रश्नों का उत्पत्तिपूर्वक उत्तर दीजिएगा।"

गौतम- ''पूछिए।''

उदक- ''आयुष्मन् गौतम! तुम्हारे प्रवचन का उपदेश करने वाले कुमारपुत्रीय श्रमण अपने पास नियम लेने को तैयार हुए श्रमणोपासक को इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं- 'राजाज्ञा, आदि कारण से, किसी गृहस्थ अथवा चोर के बांधने-छोड़ने के अतिरिक्त मैं त्रसजीवों की हिंसा नहीं करूंगा।'

आर्य! इस प्रकार का प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है। जो ऐसा प्रत्याख्यान कराते हैं, वे दुष्प्रत्याख्यान कराते हैं। इस प्रकार का प्रत्याख्यान करने और कराने वाले अपनी प्रतिज्ञा में अतिचार लगाते हैं क्योंकि प्राणी संसार है। स्थावर मरकर त्रसरूप में उत्पन्न होते हैं और त्रस मरकर स्थावररूप में भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार जो जीव 'त्रसरूप' में अघात्य थे वे ही स्थावररूप में उत्पन्न होने के बाद घात्य हो जाते हैं। इस कारण प्रत्याख्यान इस प्रकार सविशेषण करना और कराना चाहिए- राजाज्ञा आदि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बांधने-छोड़ने के अतिरिक्त मैं त्रसभूत जीवों की हिंसा नहीं करूंगा।'

इस प्रकार 'भूत' इस विशेषण के सामर्थ्य से उक्त दोषापत्ति टल जाती है। इस पर जो भी क्रोध अथवा लोभ से दूसरों को निर्विशेषण प्रत्याख्यान कराते हैं, वह 'न्याय' नहीं है।

क्यों गौतम! मेरी यह बात तुमको ठीक जंचती है कि नहीं?''

गौतम-''आयुष्मन् उदक! तुम्हारी बात मेरे दिल में ठीक नहीं बैठती। मेरी राय में ऐसा करने वाले श्रमण-ब्राह्मण यथार्थ भाषा नहीं बोलते, वह अनुतापिनी भाषा बोलते हैं और श्रमण तथा ब्राह्मणों के ऊपर झूठा आरोप लगाते हैं। यही नहीं, बल्कि प्राणी-विशेष की हिंसा को छोड़ने वालों को भी वे दोषी ठहराते हैं क्योंकि प्राणी संसारी हैं, वे त्रस मिटकर स्थावर होते हैं और स्थावर मिटकर त्रस। फिर वे त्रसकाय से निकलकर स्थावर में जाते हैं और स्थावरकाय से त्रस में। संसारी जीवों की यह स्थिति है। इस वास्ते जब वे त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं तब त्रस कहलाते हैं और तभी त्रस हिंसा का जिसने प्रत्याख्यान किया है उसके लिए वे 'अघात्य' होते हैं। इसलिए प्रत्याख्यान में 'भूत' विशेषण जोड़ने की जरूरत नहीं है।''

उदक- ''आयुष्मन् गौतम! तुम 'त्रस' का अर्थ क्या करते हो? **'त्रसप्राण सो त्रस'** यह अथवा दूसरा?''

गौतम- ''आयुष्मन् उदक! जिन जीवों को तुम 'त्रसभूतप्राण' कहते हो उन्हीं को हम 'त्रसप्राण' कहते हैं और जिन्हें हम 'त्रसप्राण' कहते हैं, उन्हीं को तुम 'त्रसभूतप्राण' कहते हो। ये दोनों तुल्यार्थक हैं, परन्तु आर्य उदक! तुम्हारे विचार में इन दो में 'त्रसभूतप्राण त्रस' यह व्युत्पत्ति निर्दोष है और 'त्रसप्राण त्रस' यह सदोष। आयुष्मण्! जिनमें वास्तविक भेद नहीं है। ऐसे दो वाक्यों में से एक का खण्डन करना और दूसरे का मण्डन यह क्या न्याय है?

हे उदक! कितने ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो कहते हैं कि हम गृह त्यागकर श्रामण्य धारण करने में समर्थ नहीं है। अभी हम श्रावकधर्म स्वीकार करते हैं, क्रमशः चारित्र का भी स्पर्श करेंगे। वे अपनी अविरतिमय प्रवृत्तियों को मर्यादित करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं कि 'राजाज्ञा आदि कारण से, गृहपति अथवा चोर के बांधने-छोड़ने के अतिरिक्त हम त्रस जीवों की हिंसा नहीं करेंगे।' यह प्रतिज्ञा भी उनके कुशल का ही कारण है।

आर्य उदक! 'त्रस मरकर स्थावर होते हैं अतः त्रसहिंसा के प्रत्याख्यानी के हाथ से उनकी हिंसा होने पर उसके प्रत्याख्यान का भंग हो जाता है' यह तुम्हारा कथन ठीक नहीं है क्योंकि 'त्रस नामकर्म' के उदय से ही जीव त्रस कहलाते हैं, परन्तु जब उनका त्रसगति का आयुष्य क्षीण हो जाता है और त्रसकाय

की स्थिति को छोड़कर वे स्थावरकाय में जाकर उत्पन्न होते हैं तब उनमें स्थावर नामकर्म का उदय होता है और वे 'स्थावरकायिक' कहलाते हैं। इसी तरह स्थावरकाय का आयुष्य पूर्ण कर जब वे त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं तब त्रस भी कहलाते हैं, प्राण भी कहलाते हैं। उनका शरीर बड़ा होता है और आयुष्य स्थिति भी लंबी होती है।''

उदक-''आयुष्मन् गौतम! तब तो ऐसा कोई पर्याय ही नहीं मिलेगा जो त्याज्य-हिंसा का विषय हो और जब हिंसा का कोई विषय ही नहीं रहेगा तब श्रावक किसकी हिंसा का प्रत्याख्यान करेगा? क्योंकि जीव संसारी है, वे सभी स्थावर मिटकर त्रस हो जाएंगे और सभी त्रस मिटकर स्थावर भी। अब यदि सब जीव त्रस मिटकर स्थावर हो जाएं तो श्रमणोपासक का 'त्रसहिंसा-प्रत्याख्यान' किस प्रकार निभ सकेगा? क्योंकि जिनकी हिंसा का उसने प्रत्याख्यान किया था वे सब जीव स्थावर हो गए हैं अतः उनकी हिंसा वह टाल नहीं सकता।''

गौतम-''आयुष्मन् उदक! हमारे मत से कभी ऐसा होता ही नहीं कि सब स्थावर त्रस अथवा सब त्रस स्थावर हो जाएं। थोड़ी देर के लिए तुम्हारा कथन प्रमाण मान लिया जाए तब भी श्रमणोपासक के त्रसहिंसा-प्रत्याख्यान में बाधा नहीं आती क्योंकि स्थावर-पर्याय की हिंसा में उसका व्रत खण्डित नहीं होता और त्रस-पर्याय में वह अधिक त्रस जीवों की हिंसा को टालता है।

आर्य उदक! अधिक त्रस जीवों की हिंसा से निवृत्त होने वाले श्रमणोपासक के लिए 'उसके किसी भी पर्याय की हिंसा का प्रत्याख्यान नहीं है' यह तुम्हारा कथन क्या उचित है? आयुष्मन्! इस प्रकार निर्ग्रन्थ प्रवचन में मतभेद खड़ा करना न्याय नहीं है।

इस समय पार्श्वापत्य अन्य स्थविर भी वहां आ गए जिन्हें देखकर गौतम ने कहा- आर्य उदक! लो, इस विषय में तुम्हारे स्थविर निर्ग्रन्थों को ही पूछ लें। हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! इस संसार में कितने ही ऐसे मनुष्य होते हैं जिनकी प्रतिज्ञा होती है कि 'जो ये अनगार साधु हैं इनको जीवन-पर्यन्त नहीं मारूंगा।' बाद में उनमें से कोई साधु चार-पांच वर्ष या ज्यादा कम समय विहारचर्या में रहकर फिर गृहवास में चला जाए और साधुहिंसा-प्रत्याख्यानी गृहस्थ गृहवास में रहता हुआ उस पुरुष की हिंसा करे तो क्या साधु को न मारने की धमकी प्रतिज्ञा का भंग होगा?''

निर्ग्रन्थ स्थविर-''नहीं, इससे प्रतिज्ञा-भंग न होगा?''

गौतम-''निर्ग्रन्थो! इसी प्रकार त्रसकाय की हिंसा का त्यागी श्रमणोपासक स्थावरकाय की हिंसा करता हुआ भी अपने प्रत्याख्यान का भंग नहीं करता, यही जानना चाहिए।

हे निर्ग्रन्थो! कोई गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र धर्म सुन संसार से विरक्त होकर सर्वसावद्य का त्यागी श्रमण हो जाए तो उस समय वह सर्व प्रकार की हिंसा का त्यागी कहा जाएगा कि नहीं?''

निर्ग्रन्थ-''हां, उस समय वह सर्वथा हिंसात्यागी ही कहा जाएगा।''

गौतम-''वही साधु चार-पांच अथवा अधिक-कम समय तक श्रामण्य-पर्याय पालकर फिर गृहस्थ हो जाए तो वह सर्वथा हिंसा-त्यागी कहा जाएगा?''

निर्ग्रन्थ-''नहीं, गृहवासी होने के बाद वह सर्वहिंसा-त्यागी श्रमण नहीं कहला सकता।''

गौतम-''वही वह जीव है जो पहले सब जीवों की हिंसा का त्यागी था, पर अब वैसा नहीं रहा क्योंकि पहले वह संयमी था पर अब असंयत है। इसी तरह त्रसकाय में से स्थावरकाय में गया हुआ जीव 'स्थावर' है 'त्रस' नहीं, यह जानना चाहिए।

निर्ग्रन्थों! कोई परिव्राजक या परिव्राजिका अन्य मत से निकलकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रवेश करके श्रमणधर्म को स्वीकार कर निर्ग्रन्थ मार्ग में विचरे तो उसके साथ निर्ग्रन्थ श्रमण आहार-पानी आदि का व्यवहार करेंगे?''

निर्ग्रन्थ- ''हां, उसके साथ आहार-पानी आदि का व्यवहार करने में कोई हानि नहीं है।''

गौतम- ''निर्ग्रन्थो! यदि वह श्रमण बना हुआ परिव्राजक गृहस्थ हो जाए तो उसके साथ भोजनादि व्यवहार किया जाएगा?''

निर्ग्रन्थ-''नहीं, फिर उसके साथ वैसा कोई भी व्यवहार नहीं किया जा सकता।''

गौतम- ''निर्ग्रन्थो! वही वह जीव है जिसके साथ पहले भोजन किया जा सकता था, पर अब नहीं किया जा सकता क्योंकि पहले वह श्रमण था, पर अब वैसा नहीं है। इसी तरह त्रस में से स्थावरकाय में गया हुआ जीव त्रसहिंसा-प्रत्याख्यानी के प्रत्याख्यान का विषय नहीं है, यही समझना चाहिए।''

उपर्युक्त अनेक दृष्टान्तों से गौतम ने निर्ग्रन्थ उदय की 'त्रस मरकर स्थावर हो और वहां उसकी हिंसा होतो श्रमणोपासक के प्रत्याख्यान का भंग होता है' इस मान्यता का निरसन किया।

'सब जीव स्थावर हो जाएंगे तब त्रस प्रत्याख्यानी का व्रत निर्विषय होगा' इस प्रकार के उदय के तर्क का खण्डन करते हुए गौतम ने कहा- ''जो श्रमणोपासक देशविरति-धर्म का पालन करके अन्त में अनशनपूर्वक समाधिमरण से मरते हैं अथवा जो श्रमणोपासक प्रथम विशेष व्रत-प्रत्याख्यान का पालन नहीं कर सकते पर अन्त में अनशनपूर्वक समाधिमरण करते हैं, उनका मरण कैसा समझना चाहिए?''

निर्ग्रन्थ-''इस प्रकार का मरण प्रशंसनीय माना जाता है।''

गौतम- ''जो जीव इस प्रकार के मरण में मरते हैं, वे त्रसप्राणी के रूप में ही उत्पन्न होते हैं और ये ही त्रस जीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय हो सकते हैं। बहुत से मनुष्य महालोभी, महारम्भी और परिग्रहधारी अधार्मिक होते हैं जो अपने अशुभ कर्मों से फिर अशुभ गतियों में उत्पन्न होते हैं। अनारम्भी साधु और अल्पारम्भी धार्मिक मनुष्य मरकर शुभ गतियों में जाते हैं। आरण्यक, आवसथिक, ग्रामनियंत्रिक और राहरिक आदि तापस मरकर भवान्तर में असुरों की गतियों में उत्पन्न होते हैं और वहां से निकलकर फिर मनुष्यगति में गूंगे-बहरे मनुष्य का भव पाते हैं। दीर्घायुष्क, समायुष्क अथवा अल्पायुष्क जीव मरकर फिर त्रसरूप में उत्पन्न होते हैं।

उक्त सब प्रकार के जीव यहां 'त्रस' हैं और मरकर फिर त्रस होते हैं। ये सर्व त्रसजीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय हैं।

कितने ही श्रमणोपासक अधिक व्रत नियम नहीं पाल सकते, फिर भी वे 'देशावकाशिक' व्रत ग्रहण करते हैं। अमुक नियमित सीमा से बाहर जाने-आने का प्रत्याख्यान करते हैं। उनके व्रत का विषय नियमित हद के बाहर के जीव तो हैं ही, परन्तु हद के भीतर भी जो त्रस जीव हैं या त्रस मरकर फिर त्रस होते हैं अथवा स्थावर मरकर त्रस होते हैं और स्थावर जीव भी जिनकी निरर्थक हिंसा का श्रमणोपासक त्यागी होता है, श्रमणोपासक के व्रत के विषय हैं।

निर्ग्रन्थो! यह बात कदापि नहीं हो सकती कि सब त्रस जीव मिटकर स्थावर हो जाएं अथवा स्थावर मिटकर त्रस। जब संसार की स्थिति ऐसी है तो फिर 'कोई ऐसा पर्याय नहीं जो श्रमणोपासक के व्रत का विषय हो' यह कथन क्या उचित होगा? और ऐसी बातों को लेकर मतभेद खड़ा करना क्या न्यायानुगत है?

आयुष्मन् उदक! मैत्री बुद्धि से भी जो श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा करता है वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र को

पाकर भी परलोक की आराधना में विघ्न डालता है। जो गुणी श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा न करके उसको मित्र भाव में देखता है वह ज्ञान,दर्शन और चारित्र को पाकर परलोक का सुधार करता है।''

गौतम का विस्तृत विवेचन और हितवचन सुनकर निर्ग्रन्थ उदक वहां से चलने लगा तब गौतम ने कहा- ''आयुष्मन् उदक! विशिष्ट श्रमण-ब्राह्मण के मुख से एक भी आर्य-धार्मिक वचन सुनकर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के बल से योग-क्षेम को प्राप्त करने वाला मनुष्य उस आर्य-धार्मिक वचन के उपदेशक का देव की तरह आदर करता है।''

उदक- ''आयुष्मन् गौतम! इन पदों का मुझे पहले ज्ञान नहीं था। इस कारण इस विषय में मेरा विश्वास नहीं जमा। परन्तु अब इन पदों को सुना और समझा है। अब मैं इस विषय में श्रद्धा करता हूं।''

गौतम- ''आयुष्मन् उदक! इस विषय में तुम्हें अवश्य ही श्रद्धा और रुचि लानी चाहिए।''

इसके बाद निर्ग्रन्थ उदक ने चातुर्मास-धर्म परम्परा से निकलकर पाञ्चमहाव्रतिक धर्ममार्ग स्वीकार करने की अपनी इच्छा व्यक्त की और गौतम उनका अनुमोदन करते हुए अपने साथ उन्हें भगवान महावीर के पास ले गए। भगवान महावीर को विधिपूर्वक वन्दन-नमस्कार कर निर्ग्रन्थ उदक ने कहा- ''भगवन्! मैं आपके समीप चातुर्याम-धर्म से पाञ्चमहाव्रतिक धर्म में आना चाहता हूं।''

महावीर ने कहा-''देवानुप्रिय! तुम्हें जैसे सुख हो, वैसा करो। इस काम में प्रमाद करना योग्य नहीं।''

इसके बाद निर्ग्रन्थ उदक महावीर-प्ररूपित पाञ्चमहाव्रतिक सप्रतिक्रमण धर्म का स्वीकार कर महावीर के श्रमणसंघ में सम्मिलित हो गए।

इस वर्ष जालि, मयालि आदि अनेक अनगारों ने विपुलाचल पर अनशन कर देह छोड़ा। अगले वर्ष का चातुर्मास नालन्दा में किया।

पैंतीसवां वर्षः सुदर्शन श्रेष्ठी की दीक्षा

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान महावीर नालंदा से विहार कर अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए वैशाली के सन्निकट वाणिज्यग्राम पधारे। यह व्यापार का मुख्य-प्रमुख केन्द्र था। सुदर्शन सेठ वहां का एक प्रमुख व्यापारी था।

प्रभु महावीर के आगमन का समाचार सुन कर प्रभु महावीर के दर्शन करने आया। उसने प्रवचन सुना। प्रवचन के बाद उसने जो प्रश्न किए उससे उसके तत्वों के प्रति ज्ञान का पता चलता है। उसने प्रभु महावीर को वन्दन करते ही प्रश्न किया-''भगवन्! काल कितने प्रकार का है?''

प्रभु महावीर-''सुदर्शन! काल चार प्रकार का है- (१) प्रमाण काल, (२) यथायुनिर्वृत्ति काल, (३) मरण काल तथा (४) अद्धा काल।''

सुदर्शन-''भगवन्! प्रमाण काल कितने प्रकार का है?''

प्रभु महावीर-''यह दिवस प्रमाण काल और रात्रि प्रमाण काल के रूप में दो प्रकार का है। चार-चार पोरसी की दिन व रात्रि होती है। अधिक से अधिक साढ़े चार मुहूर्त्त की पोरसी और न्यून से न्यून तीन मुहूर्त्त की पोरसी होती है।

सुदर्शन-''प्रभु! कौन से दिन या रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त्त की उत्कृष्ट पोरसी होती है और कब जघन्य पोरसी होती है?''

प्रभु महावीर-''आषाढ़ पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है और बारह मुहूर्त्त की रात होती है। पौष पूर्णिमा को चौदह मुहूर्त्त की रात होती है और बारह मुहूर्त्त का दिन होता है।''

सुदर्शन-''प्रभु! क्या रात्रि व दिन कभी बराबर भी होते हैं?''

प्रभु महावीर- चैत्र पूर्णिमा और आश्विन पूर्णिमा को दिन-रात्रि बराबर होते हैं। उस दिन १४ मुहूर्त्त का दिन और १४ मुहूर्त्त की रात्रि होती है। उस समय चार मुहूर्त्त में चौथाई मुहूर्त्त की एक पोरसी दिन और रात में होती है।''

सुदर्शन-''प्रभु यथायुनिर्वृत्ति काल कितने प्रकार का है?''

प्रभु महावीर-''जो कोई नारकी, तिर्यंच, मनुष्य व देव अपनी आयुष्य जैसे बांधता है, उसी अनुसार पालन करता है वह यथायुनिर्वृत्ति काल है।''

सुदर्शन-''प्रभु! मरण काल क्या है?''

प्रभु महावीर-''शरीर से जीव का या जीव से शरीर का वियोग मरण काल है।''

सुदर्शन-''अद्धाकाल किसे कहते हैं?''

प्रभु महावीर-''अद्धाकाल समयरूप, आवलिकारूप यावत् अवसर्पिणी काल रूप अनेक प्रकार का है।''

सुदर्शन-''प्रभु! पल्योपम और सागरोपम की क्या आवश्यकता है? क्या उनका कभी क्षय होता है या नहीं?''

प्रभु महावीर-''चार गति के जीवों के माप के लिए पल्योपम और सागरोपम की आवश्यकता है।''

प्रभु महावीर से अपने प्रश्नों का उचित समाधान पाकर प्रसन्न हुआ।

प्रभु महावीर ने उसका पूर्वभव बताते हुए कहा- पूर्वभव में तू एक बार महाबल नाम का राजकुमार था। तू गृहस्थ छोड़ श्रमण बना। संयम-साधना के कारण तू मरकर वह देवलोक दस सागरोपम आयु की स्थिति वाला देव बना।

वहां से आयुष्य पूर्ण कर तू अब सुदर्शन सेठ के रूप में उत्पन्न हुआ। पूर्व-जन्म में भी तुम्हें जिन (जैन) धर्म के प्रति गहन श्रद्धा थी। वह श्रद्धा वर्तमान भव में भी दिखाई दे रही है। तुम्हे जिन धर्म प्रिय था। इस जन्म में भी तूने स्थविरों से तत्व-ज्ञान सीखा है। अब भी तू निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति आस्थावान है।''

प्रभु महावीर की बातें सुनते ही सुदर्शन को जाति स्मरण ज्ञान हो गया।

उसने कहा- ''प्रभु! आपका कथन सत्य है। अब मैं श्रमण बनकर जीवन सुधारना चाहता हूं।''

सेठ सुदर्शन साधु बन गया। उसने १४ पूर्वो का ज्ञान अर्जित किया।

लम्बे समय तक साधुधर्म का पालन करते हुए कर्मों का क्षय कर डाला और मुक्ति का अधिकारी बना।[१९]

आनन्द को अवधिज्ञान

गणधर गौतम प्रभु महावीर की आज्ञा लेकर भिक्षार्थ वाणिज्यग्राम घूम रहे थे। वह वापस दूतिपलाश चैत्य की ओर लौट रहे थे। रास्ते में कोल्लाग सन्निवेश में सन्निकट उन्होंने आनन्द श्रावक के अनशन की वार्त्ता सुनी।

गौतम स्वामी के मन में विचार आया कि आनन्द श्रमणोपासक प्रभु महावीर का परम भक्त है। उसने अनशन व्रत ग्रहण कर रखा है। मुझे आनन्द को देखना चाहिए। गणधर गौतम आनन्द श्रावक को दर्शन देने कोल्लाग सन्निवेश से सीधे ही आनंद की पौषधशाला में पहुंचे।

गौतम स्वामी को अचानक देखकर श्रावक आनन्द प्रसन्न हो गया। वह वन्दना करना चाहता था परन्तु कमजोरी के कारण उठ न सका। उसने विनयपूर्वक निवेदन किया-"भगवान! मेरी शारीरिक शक्ति अत्यधिक क्षीण हो गई है अतः मैं उठने में असमर्थ हूं, कृपया आप इधर पधारिए जिससे मै आपके चरणों में नतमस्तक होकर वन्दन कर सकूं।"

गौतम स्वामी आनन्द के निकट गए। आनन्द ने विधिपूर्वक वन्दन किया।

वार्तालाप के मध्य आनंद ने प्रश्न किया-"भगवन्! मैं पूछना चाहता हूं कि क्या घर में रहते हुए एवं धर्म का पालन करते हुए श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है?"

गौतम- "हां आनन्द! श्रमणोपासक को अवधिज्ञान हो सकता है।"

आनन्द- "भगवन्! यदि ऐसा हो सकता है तो मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है जिसके प्रभाव से मैं पूर्व-दक्षिण और पश्चिम में लवण समुद्र में पांच सौ योजन, उत्तर दिशा में चुल्ल हिमवान वर्षधर पर्वत तक का क्षेत्र ऊर्ध्व दिशा में सौधर्मकल्प और नीचे अधोलोक में प्रथम नरक रत्न प्रभा में लोलुपा च्युत नामक नरकावास पदार्थों को देखता-जानता हूं।"

गौतम ने आनन्द के विशाल अवधिज्ञान का वर्णन सुना तो आश्चर्य हुआ।

गणधर गौतम ने कहा-"हां आनन्द! श्रमणोपासक को अवधिज्ञान तो होता है पर इतना विस्तृत नहीं जितना आप कह रहे हो। तुम्हारा कथन भ्रान्तियुक्त है, यह सत्य प्रतीत नहीं होता। इसलिए तुम्हें अपनी इस भूल के लिए दण्ड प्रायश्चित करना चाहिए।"

आनंद ने निर्भय होकर पूछा- "भगवन्! क्या जिनशासन में सत्य, तथ्य एवं सद्भूत कथन के लिए प्रायश्चित दिया जाता है?"

गौतम- "आनंद! ऐसा नहीं है, जैनधर्म में ऐसा कोई विधान नहीं कि सत्य बोलने के लिए दण्ड प्रायश्चित लेना है।"

आनंद- "भगवन्! तो फिर आप मुझे सत्य कथन के लिए प्रायश्चित के लिए क्यों कह रहे हैं? आप मिथ्या वचन के लिए प्रायश्चित लें।"

आनंद के अवधिज्ञान के बारे में सुनकर असमंजस में पड़ गए। उन्हें अपनी बात पर शंका हुई, वह सीधे ही प्रभु महावीर के पास पहुंचे।

भगवान को वन्दना करने के पश्चात् गणधर गौतम ने आनंद से हुई बातचीत का ब्यौरा दिया।

प्रभु महावीर ने कहा- "गौतम! आनन्द का कथन पूर्ण सत्य है, तुम्हारा कथन मिथ्या है। तुम अभी वापस जाओ और आनंद से क्षमा याचना करो।"

गणधर गौतम ने प्रभु महावीर के वचनों को स्वीकार करते हुए आनंद से क्षमा मांगी। इस घटना ने गणधर गौतम को महानतम बना दिया। गणधर गौतम जो प्रभु के प्रथम शिष्य व १४,००० साधुओं में प्रमुख थे, इन बातों से उनकी सहजता, सरलता झलकती है।

छत्तीसवां वर्ष : किरातराज की दीक्षा

वर्षावास समाप्त होते ही प्रभु महावीर वैशाली की ओर पधारे, फिर वह कोशल भूमि की ओर पधारे। धर्म उपदेश देते हुए वह साकेत नगरी में पधारे। साकेत कोशल देश का प्रसिद्ध नगर और प्रमुख व्यापार केन्द्र था।

यहां जिनदेव नाम का श्रावक रहता ता। वह एक बार भ्रमण करता हुआ कोटिवर्ष पहुंचा। वहां पर म्लेच्छों का राज्य था। जिनदेव ने किरातराज को बहुमूल्य रत्न भेंट किए। उनकी रत्नों की चमक से राजा विस्मित हुआ। उसने जिनदेव से पूछा-"तुम यह रत्न कहां से लाए हो? मैंने तो इतनी चमक वाले रत्न पहली बार देखे हैं?"

जिनदेव-"राजन्! इससे भी बढ़िया रत्न हमारे देश में होते हैं।"

किरातराज-"मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं तुम्हारे साथ जाकर ऐसे रत्न प्राप्त करूं? परन्तु मुझे तुम्हारे शक्तिशाली राजा का भय है।"

जिनदेव ने राजा को आश्वासन देते हुए कहा-"राजन्! डरने की जरूरत नहीं। मैं अपने राजा से अभी आज्ञा मंगवा लेता हूं। तुम हमारे साथ यात्रा का कार्यक्रम बनाओ।" जिनदेव के कहने से राजा तैयार हो गया।

जिनदेव ने अपने देश के राजा से आज्ञा मंगवाई। आज्ञा प्राप्त हो गई। जिनदेव और किरातराज शाहीशान से साकेत नगरी आए। किरातराज जिनदेव का अतिथि था, इसलिए वह जिनदेव के घर में ठहरा।

उन्हीं दिनों प्रभु महावीर जन-जन का कल्याण करते हुए शिष्य परिवार सहित साकेत पधारे। वहां का राजा शत्रुंजय था, जो प्रभु-भक्त था। उसे जब प्रभु के पधारने की सूचना प्राप्त हुई, तो शाही ठाठ के साथ प्रभु महावीर के दर्शनार्थ आया।

नगर में विचित्र चहल-पहल देखकर किरातराज ने जिनदेव से पूछा- "ये सभी लोग कहां जा रहे हैं?"

जिनदेव- "राजन्! आज हमारे शहर में रत्नों का एक बड़ा व्यापारी आया है वह अनमोल रत्न बांटता है, इसलिए लोग उसके पास जा रहे हैं।"

किरातराज- "सेठ जी! फिर हम क्यों पीछे रहें? हमें भी तो रत्नों की प्राप्ति करनी है। हम भी उस व्यापारी से मिलें और उत्तम रत्न प्राप्त करें।"

जिनदेव और किरातराज दोनों प्रभु महावीर के दरबार में पहुंचे। भगवान महावीर का समवसरण लगा हुआ था। रत्नजड़ित सिंहासन मन को लुभा रहा था। अष्ट प्रातिहार्यों को देखकर किरातराज को विस्मय हुआ। ऐसा रत्न व्यापारी उसने कभी देखा नहीं था। प्रभु महावीर का पवित्र उपदेश सुना। उपदेश सुनने के पश्चात् उसने प्रभु महावीर से रत्नों के बारे में पूछा। प्रभु महावीर ने कहा-"रत्न दो प्रकार के होते हैं- (१) द्रव्य रत्न, (२) भाव रत्न। द्रव्य रत्न अनेक प्रकार के हैं। पर भाव रत्न तीन प्रकार के होते हैं-

(१) ज्ञान रत्न, (२) दर्शन रत्न तथा (३) चारित्र रत्न। भाव रत्न पर प्रभु महावीर ने प्रकाश डालते हुए बताया- "यह अत्यंत प्रभावशाली रत्न और अनमोल रत्न है। जो इन रत्नों को धारण करता है, वह लोक और परलोक सम्बन्धी दुःखों का अंत हो जाता है।"

"द्रव्य रत्न केवल इस जन्म में ही सुख देते हैं। भविष्य निर्माण के क्षेत्र में व आत्मा के कल्याण से उनका कोई सम्बंध नहीं।" प्रभु महावीर की मंगलमय वाणी का किरातराज पर सुन्दर प्रभाव पड़ा।

उसने कहा-"प्रभु! आप मुझे भाव रत्न प्रदान करें।" भगवान महावीर ने उसे जीवन का कल्याण करने वाले साधु उपकरण दिए। उस किरातराज ने प्रभु महावीर के कर-कमलों से प्रव्रज्या अंगीकार की और अब वह साधु बन गए थे।[१०]

भगवान महावीर ने साकेत से पंचाल की ओर प्रस्थान किया। कुछ समय यहां के ग्रामों-नगरों में

अपनी धर्मदेशना दी। फिर शूरसेन देश में आ गए। यहां से मथुरा, शौर्यपुर आदि में घूमते हुए पुनः विदेह देश पधार गए। प्रभु महावीर का छत्तीसवां चातुर्मास मिथिला में सम्पन्न हुआ।

राजा गागलि द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण करना

प्रभु महावीर राजगृह में विराजमान थे। वहां से वह चम्पा पधारे। उस समय साल-महासाल मुनियों ने प्रभु महावीर से वन्दन करके कहा-"हे प्रभु! यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम पृष्ठ चंपा में चले जाएं, जहां हमारा भानजा गागलि नामक राजा है। हम उसे प्रतिबोध देकर आपकी शरण में लाना चाहते हैं।"

प्रभु महावीर ने गणधर गौतम को उन दोनों के साथ भेजा। राजा गागलि ने अपने मुनि बने मामा के आगमन का समाचार सुना तो वह वन्दन करने व उपदेश सुनने आया।

उपदेश सुनते ही उसे वैराग्य हो गया। वैराग्य राजा तक ही सीमित नहीं रहा। राजा के पिता पिठर और माता यशोमति भी वैराग्य के रंग में डूब गए। अंततः निर्णय किया कि गागलि के पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की जाए। तीनों ने राजकुमार का राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेक के बाद तीनों साधु बने।[1]

इस प्रकार गणधर गौतम, साल, महासाल मुनि तीनों नवदीक्षितों को लेकर पृष्ठ चंपासे चंपा की ओर आए। उस समय प्रभु महावीर चंपा में विराजमान थे।

केवलज्ञान की प्राप्ति

रास्ते में सभी जा रहे थे। साल-महासाल सोचने लगे- 'मेरी बहन, बहनोई और भानजा प्रव्रजित हो गए, यह अच्छा ही हुआ।'

गागलि विचार कर रहे थे- 'मेरे मामा साल महासाल कितने महान् हैं जिन्हें मेरी भटकती आत्मा की चिंता है। इसी कारण लम्बा कष्ट उठाकर मुझे प्रतिबोध देने यहां पधारे। इन्हीं की कृपा से मुझे पहले राज्यलक्ष्मी मिली। अब मोक्षलक्ष्मी मिल रही है।' इस प्रकार का चिंतन करते-करते वे क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। शुभ ध्यान से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया।[2]

गौतम इन्द्रभूति चम्पा आए। उन पांचों ने भगवान महावीर की प्रदक्षिणा की। वे समवसरण में स्थापित केवली परिषद् की ओर बैठने लगे। गौतम स्वामी ने उन्हें रोकते हुए कहा-"श्रमणो! ठहरो। आपको ज्ञात नहीं है कि आप किधर जा रहे हैं? पहले प्रभु महावीर को वन्दना करो।"

सर्वज्ञ महावीर सब जानते-देखते थे। उन्होंने गणधर गौतम से कहा- "गौतम! केवली की आशातना मत करो।"

अब गणधर गौतम को अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने प्रभु महावीर की साक्षी से सभी केवलियों से अपनी अज्ञानपूर्वक की गई भूल की क्षमा मांगी और अपनी आत्मा को शुद्ध किया।

गौतम इन्द्रभूति को स्वयं केवलज्ञान न होने का दुःख था। प्रभु महावीर का स्नेह-बंधन उनके मोक्षमार्ग में रुकावट था। इस बात को प्रभु महावीर ने गणधर गौतम को कई बार समझाया था। पर यह सच्चे प्यार की अनुभूति थी। प्रभु महावीर भी जानते थे कि मोहवश वह मुझे नहीं छोड़ सकता। कई जन्मों से हम दोनों इकट्ठे इसी तरह रह रहे हैं। गौतम स्वामी को अपनी मुक्ति की चिंता जरूर थी, पर जल्दी नहीं थी। मुक्ति और प्रभु महावीर में से उन्होंने हमेशा प्रभु महावीर को चुना। उन्हें वह मुक्ति

स्वीकार नहीं थी, जिसके निमित्त प्रभु महावीर स्वयं न हों।

गणधर गौतम का जीवन सरलता, सहजता, समर्पण की खुली किताब है। उनके हाथों से दीक्षित हुए कितने लोग मोक्ष पधार चुके थे। पर वह अभी वहीं थे। उन्होंने प्रभु महावीर की आज्ञा को महानता दी।

पंद्रह सौ तापस

इसी संदर्भ में एक कथा भगवतीसूत्र की टीका में उपलब्ध होती है जिसका वर्णन आचार्य देवेन्द्र मुनि ने 'भगवान महावीरः एक अनुशीलन के पृष्ठ ५६४ पर किया है। उनका कथन है-

प्रस्तुत घटना के साथ ही एक अन्य घटना का वर्णन भी मिलता है जिसकी चर्चा अभयदेवसूरि की भगवतीसूत्र, टीका १४/७, नेमिचन्द्र द्वारा उत्तराध्ययनसूत्र टीका (१०/१७) व कल्पसूत्र की टीकाओं में मिलता है। घटना का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

"कोडिन्न, दिन्न और सेवाल नामक तीन तापसों के गुरू थे। प्रत्येक के ५००-५०० शिष्य थे। इस प्रकार १,५०० तापस अष्टापद पर्वत पर आरोहण कर रहे थे। सभी तपस्या से दुर्बल हो चुके थे।

कोडिन्न तापस ५०० शिष्यों के साथ पहली मेखला तक चढ़ पाया। दिन्न दूसरी मेखला पर अटक गया। सेवाल शिष्य तीसरी मेखला तक पहुंच गया।

अष्टापद पर एक-एक योजन की आठ मेखला थीं। सभी तापस थककर रास्ते में बैठ गए।

तभी गौतम गणधर उधर आए। अपने लब्धि-बल से अष्टापद के अंतिम शिखर तक पहुंच गए। गौतम के तपोबल से सभी तापस प्रभावित हुए। वह जानते थे कि एक मेखला पार करनी कितनी कठिन है। यह साधक जो ऊपर पहुंचा है, सचमुच महान् है। तपोबली है। जब यह अष्टापद से नीचे आएगा, तब हम उनके शिष्य बन जाएंगे।

इन्द्रभूति गौतम अब नीचे आए। सभी तापसों ने उन्हें प्रणाम किया और प्रार्थना की- "प्रभु! हम आपके शिष्य हैं, हमें अपने चरणों में स्वीकार कीजिए।"

तापसो के आग्रह को स्वीकार कर गणधर गौतम ने सभी को दीक्षा प्रदान की। सभी तापस भूखे थे। इस बात को गणधर गौतम ने पहचाना। पर यहां कुछ उपलब्ध नहीं था। नगर कोसों दूर थे। गौतम स्वामी ने अक्षीण महानस लब्धि से खीर के एक भरे हुए पात्र से पंद्रह सौ तापसों को भरपेट खीर खिलाई। अपने गुरु के अद्‌भुत लब्धि-बल को देखकर सभी श्रमण प्रसन्न हुए। उनके शरीर में शक्ति का संचार हुआ। वह तापस से श्रमण बने मुनि प्रसन्नचित हो प्रभु महावीर के दर्शन को आ रहे थे।

गौतम स्वामी ने अपने धर्माचार्य निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र भगवान महावीर के गुणों व समवसरण का वर्णन करना शुरु किया। इस वर्णन को सुनकर सभी तापस भाव-विभोर हो गए। भगवान महावीर के दर्शन किए बिना उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। वह प्रभु महावीर की प्रदक्षिणा कर सीधे केवली परिषद में पधारे। गणधर गौतम को यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ, पर साथ में उन्हें अपनी छद्मस्थ अवस्था का ज्ञान था, जिसके कारण केवलज्ञान में बाधा उत्पन्न हो रही है।

प्रभु महावीर ने गणधर गौतम को बताया-"हे देवानुप्रिय! इन्हें तो रास्ते में केवलज्ञान प्राप्त हो गया था।"

जैनधर्म की यही महानता है कि शिष्य को वह गुरु बनाता है और गुरु भी संघ का भगवान बन जाता है। जैनधर्म गुण-प्रधान है, व्यक्ति-प्रधान नहीं। यहां गुणों की पूजा है, पद व शक्ति की नहीं।

सैंतीसवां वर्ष

चातुर्मास समाप्त होने पर भगवान ने मगध की ओर विहार किया। प्रत्येक ग्राम और नगर में निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश कर देते हुए आप राजगृह पधारे और गुणशील चैत्य में समवसरण हुआ।

अन्यतीर्थिकों के आक्षेपात्मक प्रश्न

गुणशील चैत्य में अनेक अन्यतीर्थिक बसते थे। भगवान की धर्मसभा विसर्जित होने पर अनेक अन्यतीर्थिक भगवान के आसपास बैठे हुए स्थविरों के पास आकर बोले-"आर्यो! तुम त्रिविध-त्रिविध से असंयत, अविरत और बाल हो।"

अन्यतीर्थिको का आक्षेप सुनकर स्थविरों ने कहा-"आर्यो! किस कारण से हम असंयत, अविरत और बाल हो सकते हैं?"

अन्यतीर्थिक-"आर्यो! तुम अदत्त ग्रहण करते हो, अदत्त खाते हो, अदत्त चखते हो। इस कारण से तुम असंयत, अविरत और बाल हो।"

स्थविर-"आर्यो! हम किस प्रकार अदत्त लेते, खाते अथवा चखते हैं?"

अन्यतीर्थिक-"आर्यो! तुम्हारे मत में दीयमान अदत्त है, प्रतिगृह्यमाण अप्रतिगृहीत है और निसृज्यमान अनिसृष्ट है क्योंकि तुम्हारे मत में दीयमान पदार्थ को दाता के हाथ से छूटने के बाद तुम्हारे पात्र में पड़ने से पहले यदि कोई बीच में से ले ले तो वह पदार्थ गृहस्थ का गया हुआ माना जाता है, तुम्हारा नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि तुम्हारे पात्र में जो पदार्थ पड़ता है वह अदत्त है क्योंकि जो पदार्थ दानकाल में तुम्हारा नहीं हुआ वह बाद में भी तुम्हारा नहीं हो सकता और इस प्रकार अदत्त को लेते, खाते और चखते हुए तुम असंयत, अविरत और बाल ही सिद्ध होते हो।"

स्थविर-"आर्यो! हम अदत्त नहीं लेते, खाते और चखते किन्तु हम दत्त लेते, खाते और चखते हैं और इस प्रकार दिया हुआ ग्रहण करते और खाते हुए हम त्रिविध-त्रिविध से संयत, विरत और पण्डित सिद्ध होते हैं।"

अन्यतीर्थिक-"आर्यो! किस प्रकार तुम दत्तग्राही सिद्ध होते हो, सो हमें समझाओ।"

स्थविर- "आर्यो! हमारे मत में दीयमान दत्त, प्रतिगृह्यमाण प्रतिगृहीत और निसृज्यमान निसृष्ट माना जाता है। गृहपति के हाथ से छूटने के अनन्तर यदि कोई उसे बीच में से उड़ा ले तो वह हमारा जाता है, गृहपति का नहीं। इस कारण हम किसी भी हेतु-युक्ति से अदत्तग्राही सिद्ध नहीं होते। परन्तु हे आर्यो! तुम खुद ही त्रिविध-त्रिविध से असंयत, अविरत और बाल सिद्ध होते हो।"

अन्यतीर्थिक-"क्यों? हम असंयत, अविरत और बाल किसलिए कहलाएंगे?"

स्थविर-"इसलिए कि तुम अदत्त लेते हो।"

अन्यतीर्थिक-"हम किस हेतु से अदत्तग्राही सिद्ध होंगे?"

स्थविर-"आर्यो! तुम्हारे मत में दीयमान, अदत्त, प्रतिगृह्यमाण अप्रतिगृहीत और निसृज्यमान अनिसृष्ट है। इस कारण तुम अदत्त लेने वाले हो। त्रिविध असंयत, अविरत और बाल हो।"

अन्यतीर्थिक-"आर्यो! तुम त्रिविध असंयत, अविरत और बाल हो।"

स्थविर-"क्यों? किस कारण से हम असंयत, अविरत और बाल कहे जाएंगे?"

अन्यतीर्थिक-"आर्यो! तुम चलते हुए पृथ्वीकाय पर आक्रमण करते हो, उस पर प्रहार करते हो,

उसको घिसते हो, दूसरे से मिलाते हो, उसे इकट्ठा करते हो और छूते हो, उसको सताते हो और उसके जीवों का नाश करते हो। इस प्रकार पृथ्वी के जीवों पर आक्रमणादि क्रियाएं करते हुए तुम असंयत, अविरत और बाल साबित होते हो।''

स्थविर- ''आर्यो! चलते हुए हम पृथ्वी पर आक्रमण आदि नहीं करते। शरीर की चिन्ता के लिए, बीमार की सेवा के निमित्त अथवा विहारचर्या के वश जब हमें पृथ्वी पर चलना पड़ता है तब भी विवेकपूर्वक धीरे-धीरे पादक्रम से चलते हैं। इसलिए न हम पृथ्वी का आक्रमण करते हैं और न उसके जीवों का विनाश ही। परन्तु आर्यो! तुम खुद ही इस प्रकार पृथ्वी के जीवों पर आक्रमण और उपद्रव करते हुए असंयत, अविरत और एकान्त बाल बन रहे हो।''

अन्यतीर्थिक-''आर्यो! तुम्हारा मत तो यह है कि गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्यमाण, अव्यतिक्रान्त और राजगृह को संप्राप्त होने का इच्छुक असंप्राप्त है।''

स्थविर-''आर्यो! ऐसा मत हमारा नहीं है। हमारे मत में तो गम्यमान गत, व्यतिक्रम्यमाण व्यतिक्रान्त और संप्राप्यमाण संप्राप्त ही माना जाता है।''

इस प्रकार स्थविर भगवन्तों ने चर्चा में अन्यतीर्थिकों को परास्त करके वहां 'गति-प्रवाद' नामक अध्ययन की रचना की।

अनगार कालोदायी के प्रश्न

(१) अशुभ कर्मकरण विषय में

उस समय भगवान महावीर को वन्दन करके अनगार कालोदायी ने पूछा-''भगवन्! जीव दुष्ट फलदायक अशुभ कर्मों को स्वयं करते हैं, यह बात सत्य है?''

महावीर-''हां कालोदायिन्! जीव अशुभ फलदायक कर्मों को करते हैं, यह बात सत्य है।''

कालोदायी-''भगवन्! जीव ऐसे अशुभ विपाकदायक पापकर्म कैसे करते होंगे?''

महावीर-''कालोदायिन्! जैसे कोई मनुष्य मनोहर रस वाले अनेक व्यंजनयुक्त विष-मिश्रित पक्वान्न का भोजन करता है, तब उसे वह पक्वान्न बहुत प्रिय लगता है। उसके तात्कालिक स्वाद में लुब्ध होकर वह प्रीतिपूर्वक खाता है, परन्तु परिणाम में वह अनिष्टकर होता है। भक्षक के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि पर वह बुरा प्रभाव डालता है। इसी प्रकार हे कालोदायिन्! जीव जब हिंसा करते हैं, असत्य बोलते हैं, चोरी करते हैं, मैथुन करते हैं, वस्तु संग्रह करते हैं, क्रोध, मान, कपट, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति, अरति, पर-परिवाद, माया-मृषावाद, मिथ्यात्व और शल्य आदि का सेवन करते हैं तब ये कार्य जीवों को अच्छे लगते हैं, परन्तु इनसे जो दुर्विपाक पापकर्म बंधते हैं उनका फल बड़ा अनिष्ट होता है, जो बांधने वालों को भोगना पड़ता है।''

कालोदायी-''भगवन्! जीव कल्याणफलदायक शुभ कर्मों को करते हैं?''

महावीर-''हां कालोदयिन्! जीव शुभफलदायक कर्मों को भी करते हैं।''

कालोदायी-''जीव शुभ कर्मों को कैसे करते हैं?''

महावीर-''कालोदायिन्! जैसे कोई मनुष्य औषध-मिश्रित पक्वान्न का भोजन करता है। उस समय यद्यपि वह भोजन उसे अच्छा नहीं लगता तथापि परिणाम में वह बल,रूप आदि की वृद्धि करके

हितकारक होता है। इसी प्रकार हिंसा, असत्य,चोरी आदि प्रवृत्तियों और क्रोधादि दुर्गुणों का त्याग जीवों को पहले बहुत दुष्कर मालूम होता है, परन्तु यह पापकर्मों का त्याग अन्त में सुखदायक और कल्याणकारक होता है। इस प्रकार हे कालोदायिन! जीवों को पापकर्म करना अच्छा लगता है और शुभ कर्म करना दुष्कर, तथापि परिणाम में एक दुःखकारक होता है और दूसरा सुखकारक।"[८१]

(२) अग्निकाय के आरम्भ के विषय में

कालोदायी-"भगवन्! दो समान पुरुष हैं। दोनों के पास समान ही उपकरण हैं। वे दोनों ही अग्निकाय के आरम्भक हैं, परन्तु उनमें से एक अग्नि को जलाता है और दूसरा उसे बुझाता है। इन दो में अधिक आरम्भक और कर्मबंधक कौन?"

महावीर-"कालोदायिन! इन दो पुरुषों में अग्नि को जलाने वाला अधिक आरम्भक है और वही अधिक कर्मबंधक है, क्योंकि जो पुरुष अग्नि को जलाता है वह पृथ्वीकाय का, अप्काय का, वायुकाय का, वनस्पतिकाय का और त्रसकाय का अधिक आरंभ करता है और अग्निकाय का कम। इसके विपरीत जो पुरुष अग्नि को बुझाता है वह अग्निकाय का अधिक आरंभ करता है, परन्तु पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन सबका अल्प आरंभ करता है। इसलिए जो अग्नि को प्रज्वलित करता है वह अधिक आरंभ करता है और उसको शान्त करने वाला अल्प।"[८२]

(३) अचित्त पुद्गलों के प्रकाश के विषय में

कालोदायी-"भगवन्! अचित्त पुद्गल प्रकाश अथवा उद्योत करते हैं? यदि करते हैं, तो अचित्त पुद्गल किस प्रकार प्रकाशित होते होंगे?"

महावीर-"कालोदायिन! अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं। कोई तेजोलेश्याधारी अनगार जब तेजोलेश्या छोड़ता है उस समय उसकी तेजोलेश्या के कुछ पुद्गल दूर जाकर गिरते हैं, कुछ नजदीक। दूर-निकट गिरे हुए वे पुद्गल प्रकाश को फैलाते हैं। हे कालोदायिन्! इस प्रकार अचित्त पुद्गल प्रकाशित होते हैं।"

कालोदायी ने भगवान महावीर का यह विवेचन स्वीकार किया।

छट्ठ, अट्ठमादि तप करके कालोदायी ने अन्त में अनशनपूर्वक देह छोड़कर निर्वाण को प्राप्त किया।[८३]

इस वर्ष गुणशील चैत्य में गणधर प्रभास ने एक मास का अनशन करके निर्वाण प्राप्त किया और अनेक अनगार विपुलाचल पर अनशनपूर्वक निर्वाण को प्राप्त हुए। अनेक नई दीक्षाएं भी हुईं।

यह वर्षावास भगवान ने राजगृह में किया।

अड़तीसवां वर्ष

इस वर्ष भगवान ने मगधभूमि में ही विहार कर निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रचार किया। चातुर्मास निकट आने पर भगवान राजगृह पधारे और गुणशील में समवसरण हुआ।

अन्यतीर्थिकों की मान्यताओं के सम्बन्ध में गौतम के प्रश्न

(१) क्रियाकाल और निष्ठाकाल के विषय में

गौतम स्वामी ने पूछा-"भगवन्! अन्यतीर्थिक कहते हैं- चलमान चलित नहीं होता, इसी तरह उदीयमाण, उदीरित, वेद्यमान वेदित, हीयमान हीन, छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण नहीं होता।

(२) परमाणुओं के संयोग-वियोग के सम्बन्ध में

अन्यतीर्थिक कहते हैं- दो परमाणु पुद्गल एकत्र नहीं मिलते, क्योंकि दो परमाणु पुद्गलों में स्निग्धता नहीं होती। तीन परमाणु एकत्र मिल सकते हैं, क्योंकि तीन परमाणुओं में स्निग्धता होती है। इन एकत्र मिले हुए तीन परमाणुओं का विश्लेषण करने का दो अथवा तीन टुकड़े होंगे। दो टुकड़े होने पर डेढ़-डेढ़ परमाणु का एक-एक टुकड़ा होगा और तीन टुकड़े होने पर एक-एक परमाणु का एक-एक टुकड़ा होगा। इसी प्रकार चार तथा पांच आदि परमाणु पुद्गल एकत्र मिलते हैं और इस प्रकार मिले हुए परमाणु समुदाय ही दुःख का रूप धारण करते हैं। वह दुःख भी शाश्वत है और उसमें सदा हानि-वृद्धि होती रहती है।

(३) भाषा के भाषात्व के सम्बन्ध में

अन्यतीर्थिक कहते हैं-"बोली जाने वाली अथवा बोली गई 'भाषा' कहलाती है, पर बोली जाती भाषा 'भाषा' नहीं कहलाती। और भाषा 'भाषक' की नहीं किन्तु अभाषक की कहलाती है।"

(४) क्रिया की दुःखात्मा के विषय में

अन्यतीर्थिक कहते हैं- "पहले क्रिया दुःखरूप होती है और पीछे भी वह दुःखरूप होती है, पर क्रिया-काल में क्रिया दुःखात्मक नहीं होती क्योंकि 'करण' से नहीं किन्तु 'अकरण' से ही क्रिया दुःखात्मक होती है, यह कहना चाहिए।"

(५) दुःख की अकृत्रिमता के विषय में

अन्यतीर्थिक कहते हैं-"दुःख को कोई बनाता नहीं है और न ही कोई उसे छूता है। प्राणिमात्र बिना किए ही दुःखों का अनुभव करते हैं, यह कहना चाहिए। भगवन्! अन्यतीर्थिकों के ये मन्तव्य क्या सत्य हैं?"

महावीर-"गौतम! अन्यतीर्थिकों का यह कथन कि 'चलमान चलित नहीं होता' ठीक नहीं है। इस विषय में मैं कहता हूं कि "**चलेमाणे चलिए**" अर्थात चलने लगा। वह चला क्योंकि प्रत्येक समय की क्रिया अपने कार्य की उत्पत्ति के साथ समाप्त होती है। इससे सिद्ध हुआ कि क्रियाकाल और निष्ठाकाल एक है, अतः **'चलेमाणे'** शब्द से सूचित 'वर्तमान' और **'चलिए'** से ध्वनित 'भूत' काल वास्तव में भिन्न नहीं है। अतएव 'चलत्' और 'चलित' भी एक ही कार्य के 'साध्यमान' और 'सिद्ध' ऐसे दो भिन्न रूप हैं। यही बात 'उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, हीयमान हीन, छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए।

गौतम! परमाणुओं के मिलने-बिखरने के सम्बन्ध में भी अन्यतीर्थिकों की मान्यता ठीक नहीं है। इस विषय में मेरा मत यह है कि दो परमाणु भी एकत्र जुट सकते हैं, क्योंकि दो परमाणुओं में भी उन्हें जोड़ने वाली स्निग्धता विद्यमान होती है। मिले हुए दो परमाणु को तोड़ने पर फिर वे एक-एक करके जुदा हो जाते हैं। इसी तरह तीन परमाणु भी आपस में मिल सकते हैं और तोड़ने पर फिर वे एक-एक करके अलग हो जाते हैं।

तीन परमाणु भी आपस में मिल सकते हैं और तोड़ने पर अलग हो जाते हैं। तीन परमाणुओं के स्कन्ध को तोड़कर यदि उसके दो विभाग किए जाएं तो एक भाग में एक परमाणु रहेगा और एक में दो। इन्हीं तीन परमाणुओं के स्कन्ध को तोड़कर तीन भाग किए जाएं तो एक-एक परमाणु का एक-एक भाग होगा।

इसी प्रकार चार, पांच, आदि परमाणु एकत्र मिलकर स्कन्ध बनते हैं, परन्तु वे स्कन्ध अशाश्वत होते हैं और नित्य ही उनमें हानि-वृद्धि होती रहती है।

भाषा के विषय में भी अन्यतीर्थिकों के विचार प्रामाणिक नहीं हैं। इस विषय में मेरा सिद्धान्त यह है कि बोली जाने वाली अथवा बोली हुई भाषा 'भाषा' नहीं, पर बोली जाती भाषा ही 'भाषा' है। और वह भाषा 'अभाषक' की नहीं, पर 'भाषक' की होती है।

क्रिया की दुःखरूपता के सम्बन्ध में भी अन्यतीर्थिकों की मान्यता यथार्थ नहीं। पहले या पीछे क्रिया दुःखरूप नहीं होती, किन्तु क्रियाकाल में ही वह दुःखात्मक होती है और वह भी अकरणरूप से नहीं, करणरूप से दुःखात्मक होती है।

गौतम! जो लोग दुःख को 'अकृत्य' और 'अस्पृश्य' कहते हैं वे भी मिथ्यावादी हैं। दुःख 'कृत्य' और 'स्पृश्य' है, क्योंकि संसारी जीव उसको बनाते, छूते और भोगते हैं, यह कहना चाहिए।"[८१]

एक समय में दो क्रियाओं के विषय में

गौतम ने कहा- "भगवन्! अन्यतीर्थिक कहते हैं- एक जीव एक समय में ईर्यापथिकी और सांपरायिकी इन दो क्रियाओं को करता है। जिस समय में ईर्यापथिकी करता है उसी समय में सांपरायिकी भी करता है और जिस समय में सांपरायिकी करता है उसी समय में वह ईर्यापथिकी भी करता है। अर्थात् ईर्यापथिकी करता हुआ सांपरियकी और सांपरायिकी करता हुआ ईर्यापथिकी करता है। इस प्रकार अन्यतीर्थिक एक समय में दो क्रियाओं के करने की बात कहते हैं, सो क्या यह कथन ठीक है?"

महावीर-"नहीं गौतम! अन्यतीर्थिकों का यह कथन ठीक नहीं है। इस विषय में मेरा मत यह है कि एक जीव एक समय में एक ही क्रिया करता है- ईर्यापथिकी अथवा सांपरियकी। जिस समय वह ईर्यापथिकी क्रिया करता है, उस समय सांपरायिकी नहीं करता और सांपरायिकी करने के समय ईर्यापथिकी नहीं करता।"[८२]

निर्ग्रन्थों के देवभव के भोग-सुखों के विषय में

गौतम ने पूछा-"भगवन्! अन्यतीर्थिक कहते हैं- निर्ग्रन्थ कालधर्म प्राप्त होकर देवलोक में देव होता है, तब वह अपनी दिव्य आत्मा से वहां के अन्य देव-देवियों के साथ अथवा अपनी देवियों के साथ विषय-भोग नहीं करता किन्तु वह अपनी ही आत्मा में से अन्य वैक्रिय रूप बना-बनाकर उनके साथ विषय-सुख भोगता है। क्या भगवन्! अन्यतीर्थिकों का यह कथन सत्य है?"

महावीर- "गौतम! अन्यतीर्थिक इस विषय में जो कहते हैं, वह सत्य नहीं है। सच तो यह है कि निर्ग्रन्थ कालधर्म प्राप्त होने के बाद किसी भी ऐसे देवलोक में देव होता है जो महाऋद्धि और प्रभाव-सम्पन्न हो और जहां के देवों की आयुष्य-स्थिति बहुत लम्बी हो, वहां देवरूप से उत्पन्न निर्ग्रन्थ का जीव महातेजस्वी और ऋद्धिमान् देव होता है। वह वहां पर दूसरे देवों, उनकी देवियों और अपनी देवियों को अनुकूल करके उनसे विषयावासना पूर्ण करता है और एक जीव एक समय में एक ही वेद का अनुभव करता है- स्त्रीवेद का अथवा पुरुषवेद का। स्त्रीवेद के अनुभवकाल में पुरुषवेद का अनुभव नहीं करता और पुरुषवेद के अनुभवकाल में स्त्रीवेद का।

पुरुषवेद के उदयकाल में पुरुष स्त्री की ओर स्त्रीवेद के उदयकाल में स्त्री पुरुष की प्रार्थना करती